मेरे नाविक!

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।

जिस निर्जन में सागर लहरी।
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।

जहाँ साँझ-सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँत घनी रे।

जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्र-पट चल माया में—
विभुता विभु सी पड़े दिखाई,
दुख सुख वाली सत्य बनी रे।

श्रम विश्राम क्षितिज वेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे!

Scanned with CamScanner

ले चल वहाँ भुलावा देकर

परिचय–प्रस्तुत गीत में सरल हृदय कवि इस संसार से कहीं दूर किसी अज्ञात-लोक में जाना चाहता है। उसकी दृष्टि में यह दृश्यमान जगत् छल, कपट एवं प्रवंचना से परिपूर्ण है। सुख और शान्ति इस जगत् से कोसों दूर है। यहाँ प्रेमी को प्रेम के स्थान पर घृणा, निराशा एवं दुःख प्राप्त होते हैं। अविश्वास और स्वार्थ का यहाँ बोलबाला है। अतः कवि अपने नाविक (अथवा नियन्ता) से अनुरोध करता है कि वह उसे यहाँ से कहीं दूर किसी ऐसे रम्य-स्थल पर ले चले, जहाँ चिरशान्ति एवं अमरता का स्थायी आवास हो, जहाँ किसी प्रकार की चिन्ता एवं निराशा न हो और जहाँ बैठकर वह (कवि) इस संसार के सुख-दुःखात्मक दृश्यों के चलचित्र को तटस्थ भाव से देख सके। इस प्रकार वह संसार से पलायन नहीं करना चाहता, वरन् वह एक ऐसी महायात्रा पर चलने का इच्छुक है, जहाँ पहुँच कर व्यक्ति चिर-सुख, चिरशांति एवं परम आनन्द को प्राप्त करता है। वह सांसारिक संघर्षों से मुँह न मोड़ते हुए एक उदात्त लक्ष्य की ओर अग्रसर होना चाहता है। वह उस परब्रह्म की खोज करना चाहता है, जिसे पा लेने पर समस्त दुःखों एवं निराशाओं का अन्त हो जाएगा।

ले चल . . . . . अवनी रे।

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी।
अम्बर के कानों में गहरी–
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।

सप्रसंग व्याख्या–ऐ मेरे नाविक ! (मेरी तुमसे सानुरोध प्रार्थना है कि) तुम मुझे भुलावा देकर उस (अज्ञात) निर्जन द्वीप में ले जाओ, जहाँ सागर की उत्ताल तरंगें इस कोलाहल भरे संसार को त्याग उठ-उठकर अम्बर के कानों में निष्कपट प्रेम की मधुर कथा कह रही हों।

कवि निर्जन द्वीप में इसलिए जाना चाहता है, क्योंकि वह सांसारिक संघर्षों का सामना करते-करते अब ऊब गया है। सांसारिक संघर्षों का सामना करने की

Scanned with CamScanner

उसमें सामर्थ्य न हो, ऐसी बात नहीं। वह तो सांसारिक संघर्षों में दुःख, कपट एवं प्रवंचना का प्राधान्य देखकर ही उनसे विलग होना चाहता है। उसकी इस संसार में रमने की तीव्र इच्छा है, किन्तु यहाँ के प्रवंचना भरे प्रेम-व्यापारों को देखकर उसका चित्त अत्यन्त क्षुब्ध एवं निराश है, अतः वह ऐसे लोक में जाना चाहता है, जहाँ सागर की लहरें उसे निश्छल प्रेम का मधुर आख्यान सुनाकर आह्लादित करें।

विशेष–'ले चल वहाँ भुलावा देकर' गीत के आधार पर कुछ आलोचक 'प्रसाद' जी को पलायनवादी मान बैठे हैं, किन्तु यह उनकी भूल है। वस्तुतः 'प्रसाद' पलायनवादी नहीं हैं, वे तो उस परब्रह्म की खोज करना चाहते हैं, जहाँ चिरमंगल एवं चिरजागरण है। विश्व के अनेक कवियों ने सांसारिक प्रेम से चोट खाई है, उन्हें प्रेम में अविश्वास, असफलता एवं निराशा के अतिरिक्त कुछ प्राप्त न हुआ। फलतः उनमें से कुछ पलायनवादी हो गए। उन्होंने संसार-त्याग पर तो बल दिया, किन्तु उन्हें स्वयं यह ज्ञात नहीं कि वे कहाँ जाएँ! दूसरी ओर 'प्रसाद' अपने लक्ष्य से सुपरिचित हैं। उनकी कल्पना में तो एक आदर्श ससार का चित्र है। पलायनवादी भावधारा का एक नमूना 'दिनकर' की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है–

मैं न रुकूँगा इस भूतल पर जीवन, यौवन प्रेम गंवाकर,
वायु उड़ाकर ले चल मुझको जहाँ-कहीं इस जग से बाहर। –रेणुका

जहाँ सांझ-सी . . . . . घनी रे।

जहाँ सांझ सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँत घनी रे।

सप्रसंग व्याख्या–(यहाँ कवि अपनी भावनाओं का प्राकृतिक उपादानों पर आरोपण करते हुए कहता है कि जिस प्रकार मैं सांसारिक जीवन के नाना प्रकार के उपदेशों से संघर्ष करते थक गया हूँ, उसी प्रकार) संध्या की कोमल-मधुर काया भी क्लान्त एवं श्रान्त प्रतीत होती है, (मानों दिनभर उसे नाना प्रकार के संघर्ष सहन करने पड़ते हों।) वह नील (नीलाकाश रूपी) नेत्रों से तारों की पंक्तियाँ ढुलकाती है। (आकाशमण्डल में टिमटिमाने वाले तारे मानो उसकी आँखों के आँसू हैं जिनके प्रवाह से वह अपने दुःख-विषाद को व्यक्त करती है।)

विशेष–छायावादी काव्य की अनेक विशेषताएँ 'लहर' के प्रगीतों में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में भी छायावादी काव्य की एक अन्यतम विशेषता–प्रकृति का मानवीकरण–का सुन्दर रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोपण प्रायः समस्त छायावादी कवियों में मिलता है, किन्तु इस दृष्टि से 'प्रसाद' का काव्य विशेषतः समृद्ध है। यहाँ 'प्रसाद' प्रेम के अभाव में

दुखी हैं, अतः उन्हें प्रकृति भी दुखी दृष्टिगत हो रही है। उनके हृदय में अत्यन्त कोमल भावना व्याप्त है जिससे प्रेरित होकर वह व्यष्टि के स्थान पर समष्टि के सुख की कल्पना करते हैं–

'नील नयन से ढुलकाती ताराओं की पाँत घनी रे।'
जिस गम्भीर ..... बनी रे।
जिस गम्भीर मधुर छाया में–
विश्व चित्र-पट चल माया में–
विभुता विभु सी पड़े दिखाई,
दुख सुख वाली सत्य बनी रे।

सप्रसंग व्याख्या–ऐ मेरे नाविक! (तू मुझे ऐसे स्थान पर ले चल) जहाँ की गंभीर एवं मधुर छाया में बैठकर मैं विश्व (के क्रिया-कलापों) को चित्रपट की भाँति देख सकूँ तथा प्रभु की दुःख-सुखात्मक वास्तविक व्यापकता (विभुता) से परिचित हो सकूँ।

यहाँ कवि रहस्यवादी हो गया है। वह ऐसे स्थान पर पहुँचना चाहता है जहाँ पर उसे चिरविश्रामदायिनी छाया मिल सके और विश्राम करते हुए वहाँ से सम्पूर्ण विश्व के क्रिया-कलापों को चित्रपट की भाँति देख सके, जहाँ से उसे विश्व की वास्तविकताओं का परिज्ञान हो सके, सुख-दुख के क्रमिक चक्र का स्पष्टीकरण हो सके और सर्वव्यापी ब्रह्म की सर्वव्यापकता का रहस्य विदित हो सके।

विशेष–१. सुख-दुःख संसार में क्रमिक रूप से आते हैं। आज दुःख है तो कल सुख, आज हर्ष है तो कल विषाद। कवि पंत ने भी अपनी 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में ऐसे अनेक भाव व्यक्त किये हैं, जिनकी 'प्रसाद' जी की 'दुख-सुख वाली सत्य बनी रे' उक्ति से काफी समता है। यथा–

आज का दुख, कल का आह्लाद, और कल का सुख, आज विषाद,
समस्या स्वप्न गूढ़ संसार पूर्ति जिसकी उस पार;
जगत जीवन का अर्थ विकास, मृत्यु, गति-क्रम का ह्रास।

२. कवि की रहस्यमयता की अभिव्यंजक इन पंक्तियों में प्रगीत-तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

३. सुख-दुःख विषयक सत्य और प्रभु की प्रभुता का ज्ञान छलछद्मपूर्ण सांसारिक रीति-नीतियों से तो संभव नहीं। इसके लिए तो ब्रह्मलोक ही उपयुक्त है। संसार में रहते हुए मनुष्य सांसारिक आकर्षणों में लिप्त हो जाता है, जिससे वह तत्त्वदर्शन नहीं कर पाता, किन्तु ब्रह्मलोक में स्थित वह, सिनेमा के तटस्थ दर्शक की भाँति संसार के चित्रपट की समस्त वास्तविकताओं का परिचय प्राप्त कर लेता है। इसलिए कवि ने कहा है–

जिस गंभीर मधुर छाया में– विश्व चित्रपट चल माया में।

Scanned with CamScanner

श्रम विश्राम . . . . . घनी रे !
श्रम विश्राम क्षितिज वेला से-
जहाँ सृजन करते मेला से-
अमर जागरण उषा नयन से-
बिखराती हो ज्योति घनी रे !

सप्रसंग व्याख्या–(कवि अन्त में फिर अपने नाविक अथवा नियन्ता से प्रार्थना करता है कि) ऐ नाविक ! तू मुझे ऐसे स्थल पर ले चल जहाँ क्षितिज की सीमा से श्रान्ति के बाद फिर विश्राम मिलता हो तथा जहाँ उषा अपने नेत्रों (उज्ज्वल रश्मियों) से अमर जागरण की ऐसी ज्योति बिखेर रही हो जो सृजनात्मक शक्ति से परिपूर्ण हो।

कवि एक ऐसे कल्पना-लोक में जाना चाहता है, जहाँ चिरन्तन सुख, चिरन्तन जागरण एवं चिरन्तन कर्मण्यता वर्तमान हो, सभी वस्तुओं में स्फूर्ति एवं सजीवता हो, सर्वत्र जीवन की कर्मण्यता व्यक्त हो तथा जहाँ का अरुणोदय सृजनात्मक शक्ति-सम्पन्न हो।

विशेष–एक अन्य प्रसिद्ध कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने भी निम्नलिखित पंक्तियों में कुछ ऐसे ही संसार की कल्पना की है–

पकड़े कमला, श्रम के कर को दिन फेर पिता, वर दे सविता।

Scanned with CamScanner